ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 258-260**

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

समकालीन हिंदी साहित्य में घरेलू स्त्री–श्रम का अदृश्य संसार : अस्मिता, श्रम और लैंगिक असमानता का आलोचनात्मक अध्ययन

प्रियांशा त्रिपाठी
उन्नाव (उ0प्र0) भारत

Received-16.06.2025, Revised-21.06.2025, Accepted-26.06.2025 **E-mail : priyanshatripathi300@gmail.com**

सारांशः ***भारतीय सामाजिक संरचना में घर को लंबे समय से स्त्री के स्वाभाविक कार्यक्षेत्र के रूप में देखा जाता रहा है। भोजन बनाना, सफाई करना, बच्चों तथा वृद्धों की देखभाल, परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना, घरेलू संसाधनों का प्रबंधन करना और भावनात्मक स्तर पर परिवार को जोड़े रखना जैसे अनेक कार्य स्त्री के दैनिक जीवन का हिस्सा हैं। इन कार्यों में समय, श्रम, कौशल और मानसिक ऊर्जा का व्यापक निवेश होता है, किंतु प्रायः इन्हें 'काम' के रूप में वह सामाजिक और आर्थिक मान्यता नहीं मिलती, जिसकी वे वास्तविक रूप से अधिकारी हैं। घरेलू स्त्री–श्रम की यही अदृश्यता पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। समकालीन हिंदी साहित्य ने इस अदृश्य श्रम को अनेक स्तरों पर अभिव्यक्ति दी है। कहानी, उपन्यास और अन्य साहित्यिक विधाओं में स्त्री के घरेलू जीवन के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि घर केवल प्रेम, सुरक्षा और अपनत्व का स्थान नहीं, बल्कि श्रम–विभाजन, सत्ता–संबंध और लैंगिक असमानता की संरचनाओं का भी क्षेत्र है। प्रस्तुत आलेख में समकालीन हिंदी साहित्य के संदर्भ में घरेलू स्त्री–श्रम, उसकी सामाजिक अदृश्यता, स्त्री–अस्मिता, अवैतनिक श्रम, दोहरे श्रम और बदलते पारिवारिक संबंधों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। साथ ही यह देखने का प्रयास किया गया है कि साहित्य किस प्रकार घरेलू श्रम को निजी दायरे से निकालकर सामाजिक प्रश्न में परिवर्तित करता है।***

कुंजीभूत शब्द– कौशल, घरेलू स्त्री–श्रम, स्त्री अस्मिता, लैंगिक असमानता, पितृसत्ता, अवैतनिक श्रम, समकालीन हिंदी साहित्य, स्त्री विमर्श, दोहरे श्रम।

प्रस्तावना– श्रम मनुष्य के जीवन और समाज की आधारभूत आवश्यकताओं में से एक है। सामान्यतः श्रम की चर्चा करते समय आर्थिक उत्पादन, रोजगार, मजदूरी और बाजार से जुड़े कार्यों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसके विपरीत घर के भीतर प्रतिदिन किए जाने वाले कार्य अक्सर श्रम की औपचारिक परिभाषा से बाहर रह जाते हैं। विशेष रूप से स्त्रियों द्वारा किए जाने वाले घरेलू कार्यों को लंबे समय तक उनके 'कर्तव्य', 'स्वभाव' अथवा 'पारिवारिक जिम्मेदारी' के रूप में देखा गया। परिणामतः जिस कार्य में उनका जीवन–समय लगातार व्यय होता है, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक पहचान अपेक्षाकृत कम रही।

घरेलू स्त्री–श्रम की समस्या केवल यह नहीं है कि स्त्री घर का काम करती है। वास्तविक प्रश्न यह है कि इस श्रम को समाज किस दृष्टि से देखता है। यदि वही कार्य किसी सेवा के रूप में बाजार में किया जाए तो उसका आर्थिक मूल्य निर्धारित किया जाता है, लेकिन परिवार के भीतर वही कार्य स्त्री द्वारा किए जाने पर उसे अक्सर प्रेम या दायित्व के नाम पर अदृश्य कर दिया जाता है। इस प्रकार घरेलू श्रम का प्रश्न आर्थिक होने के साथ–साथ सांस्कृतिक, सामाजिक और लैंगिक प्रश्न भी बन जाता है।

समकालीन हिंदी साहित्य ने स्त्री के इस अनुभव को गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। स्त्री पात्रों के जीवन में रसोई, घर, परिवार, बच्चों की देखभाल, पति और अन्य परिजनों की अपेक्षाएँ केवल पृष्ठभूमि नहीं हैं; वे उनके अस्तित्व और निर्णयों को प्रभावित करने वाली सक्रिय सामाजिक शक्तियाँ हैं। साहित्य ने यह दिखाया है कि घर की चारदीवारी के भीतर होने वाला श्रम स्त्री की पहचान, स्वतंत्रता और आत्मसम्मान से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है।

घरेलू श्रम : काम से 'कर्तव्य' तक– भारतीय समाज में स्त्री के घरेलू कार्यों को पारंपरिक रूप से परिवार के प्रति उसके कर्तव्य के रूप में स्थापित किया गया। भोजन तैयार करना, घर व्यवस्थित रखना, बच्चों की देखभाल करना और परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं को प्राथमिकता देना स्त्री की आदर्श छवि से जोड़ दिया गया। इस व्यवस्था में स्त्री के श्रम को स्वाभाविक मान लिया जाता है। यहीं से घरेलू श्रम की अदृश्यता प्रारंभ होती है। जब किसी कार्य को 'कर्तव्य' कहा जाता है तो उसके लिए पारिश्रमिक, विश्राम, श्रम–विभाजन अथवा सामाजिक मान्यता की माँग कमजोर पड़ जाती है। स्त्री चाहे कितने ही घंटे काम करे, उसके श्रम का मूल्यांकन प्रायः इस आधार पर नहीं होता कि उसने कितना श्रम किया, बल्कि इस आधार पर होता है कि उसने परिवार की अपेक्षाओं को कितना पूरा किया।

साहित्य इस विडंबना को उजागर करता है। स्त्री पात्र अक्सर सुबह से रात तक लगातार सक्रिय दिखाई देती हैं, लेकिन परिवार की दृष्टि में उनका श्रम इतना सामान्य बना दिया जाता है कि उसके न किए जाने पर ही उसकी उपयोगिता का एहसास होता है। यह स्थिति बताती है कि अदृश्यता का अर्थ श्रम का न होना नहीं, बल्कि श्रम के अस्तित्व को स्वीकार न किया जाना है।

घर : प्रेम का स्थान या श्रम का क्षेत्र?– घर को भारतीय संस्कृति में सुरक्षा, प्रेम और पारिवारिक एकता के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। किंतु स्त्री अनुभव के स्तर पर घर का अर्थ हमेशा इतना सरल नहीं है। घर स्त्री के लिए अपनत्व का स्थान होने के साथ–साथ जिम्मेदारियों और अपेक्षाओं का केंद्र भी हो सकता है।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री के घरेलू संसार का चित्रण इस द्वंद्व को सामने लाता है। स्त्री परिवार से भावनात्मक रूप से जुड़ी होती है, लेकिन इसी भावनात्मक जुड़ाव का उपयोग कभी–कभी उसके श्रम को स्वाभाविक मानने के लिए किया जाता है। वह परिवार की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकताओं से ऊपर रखती है। उसके लिए आराम, व्यक्तिगत समय, शिक्षा, रचनात्मकता और आत्म–विकास की संभावनाएँ अक्सर घरेलू जिम्मेदारियों के बाद आती हैं।

इस संदर्भ में साहित्य का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है क्योंकि वह घर के उन छोटे–छोटे दृश्यों को अर्थ प्रदान करता है जिन्हें सामान्य जीवन में अनदेखा कर दिया जाता है। रसोई में बिताया गया समय, बच्चों के विद्यालय और स्वास्थ्य से संबंधित जिम्मेदारियाँ, परिवार के सदस्यों की पसंद–नापसंद का ध्यान रखना, मेहमानों की व्यवस्था करना और घर के भावनात्मक वातावरण को संभालनाकृये सभी कार्य मिलकर स्त्री के जीवन का बड़ा हिस्सा निर्मित करते हैं।

घरेलू श्रम और स्त्री–अस्मिता– स्त्री–अस्मिता का प्रश्न केवल बाहरी स्वतंत्रता से संबंधित नहीं है। यह इस बात से भी जुड़ा है कि स्त्री अपने श्रम, समय और व्यक्तित्व को किस प्रकार पहचानती है। जब समाज स्त्री के घरेलू श्रम को स्वाभाविक मानता है, तब स्त्री के लिए स्वयं अपने श्रम का मूल्य निर्धारित करना भी कठिन हो जाता है।

अनुरूपी लेखक / संयुक्त लेखक

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री पात्रों के भीतर उत्पन्न यह आत्मबोध एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत है। स्त्री धीरे–धीरे यह प्रश्न उठाती है कि परिवार के लिए उसका योगदान केवल उसका कर्तव्य क्यों माना जाए? उसकी इच्छाएँ, थकान, आकांक्षाएँ और व्यक्तिगत समय भी उतने ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हों?

यहाँ अस्मिता का अर्थ परिवार का विरोध करना नहीं है। बल्कि इसका अर्थ है परिवार के भीतर रहते हुए भी स्वयं को स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करना। साहित्य में स्त्री का यह आत्मबोध पितृसत्तात्मक संरचना के भीतर एक वैचारिक हस्तक्षेप प्रस्तुत करता है।

अवैतनिक श्रम की समस्या– घरेलू स्त्री–श्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष उसका अवैतनिक होना है। घरेलू कार्य के लिए सामान्यतः कोई वेतन निर्धारित नहीं होता। इसके बावजूद यह श्रम परिवार की आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में केंद्रीय भूमिका निभाता है।

यदि खाना बनाना, सफाई, कपड़े धोना, बच्चों की देखभाल और बुजुर्गों की सेवा जैसे कार्य बाजार से करवाए जाएँ तो उनके लिए आर्थिक संसाधनों की आवश्यकता होगी। परिवार में स्त्री द्वारा इन कार्यों को किए जाने से यह लागत दिखाई नहीं देती। इस प्रकार स्त्री का श्रम परिवार की अर्थव्यवस्था को अप्रत्यक्ष रूप से सहारा देता है।

साहित्य इस आर्थिक अदृश्यता को मानवीय अनुभव से जोड़ता है। स्त्री के श्रम का मूल्य केवल रुपये में निर्धारित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसमें भावनात्मक श्रम भी शामिल है। वह परिवार के सदस्यों की भावनाओं, संबंधों और जरूरतों को लगातार समझती और संभालती है। इसीलिए घरेलू श्रम को केवल शारीरिक श्रम मानना भी उसके वास्तविक स्वरूप को सीमित करना होगा।

भावनात्मक श्रम : अदृश्यता की दूसरी परत– स्त्री के घरेलू श्रम की चर्चा करते समय भावनात्मक श्रम पर विशेष ध्यान आवश्यक है। परिवार में किसी सदस्य के दुख, तनाव, बीमारी या असफलता की स्थिति में स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह भावनात्मक सहारा प्रदान करे। बच्चों की भावनात्मक आवश्यकताओं से लेकर पति और बुजुर्गों की चिंताओं तक, स्त्री अक्सर परिवार की भावनात्मक व्यवस्था को संभालने वाली भूमिका निभाती है।

यह श्रम सामान्यतः दिखाई नहीं देता। इसे किसी समय–सारिणी में दर्ज नहीं किया जाता और न ही इसकी कोई स्पष्ट आर्थिक कीमत होती है। लेकिन इसके अभाव में परिवार का भावनात्मक संतुलन प्रभावित हो सकता है।

समकालीन साहित्य में स्त्री के मौन, उसकी थकान, उसकी अनकही इच्छाओं और उसके भीतर चलने वाले संघर्ष को अभिव्यक्ति देकर इस भावनात्मक श्रम को दृश्य बनाया गया है। साहित्य का यह पक्ष विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह उन अनुभवों को भाषा देता है जिनके लिए सामाजिक जीवन में अक्सर कोई सार्वजनिक शब्दावली उपलब्ध नहीं होती।

कामकाजी स्त्री और दोहरे श्रम का संकट– आधुनिक शिक्षा और रोजगार ने स्त्री के लिए घर से बाहर निकलने की नई संभावनाएँ पैदा की हैं। किंतु रोजगार प्राप्त करना घरेलू जिम्मेदारियों से स्वतः मुक्ति नहीं देता। अनेक स्त्रियाँ बाहर पेशेवर काम करने के साथ–साथ घर के अधिकांश कार्यों की जिम्मेदारी भी उठाती हैं। इस स्थिति को दोहरे श्रम की स्थिति कहा जा सकता है।

समकालीन हिंदी साहित्य में कामकाजी स्त्री का अनुभव इसी कारण जटिल दिखाई देता है। कार्यालय या कार्यस्थल पर उससे दक्षता की अपेक्षा की जाती है और घर में उससे पारंपरिक भूमिकाएँ निभाने की। वह दो अलग–अलग क्षेत्रों में अपनी योग्यता सिद्ध करती है, किंतु दोनों स्थानों पर अपेक्षाओं का दबाव अलग–अलग रूप में उपस्थित रहता है।

इस दोहरे श्रम का प्रभाव स्त्री के समय पर पड़ता है। उसके पास आराम, आत्मचिंतन, साहित्यिक–सांस्कृतिक गतिविधियों अथवा निजी संबंधों के लिए अपेक्षाकृत कम समय बचता है। इसलिए स्त्री की वास्तविक मुक्ति केवल रोजगार तक सीमित नहीं हो सकती; घरेलू श्रम के न्यायपूर्ण विभाजन की आवश्यकता भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

साहित्य में प्रतिरोध की चेतना– समकालीन हिंदी साहित्य की स्त्री केवल पीड़ित पात्र बनकर नहीं रह जाती। वह प्रश्न करती है, असहमति व्यक्त करती है और अपने जीवन के निर्णयों में भागीदारी चाहती है। घरेलू श्रम के संदर्भ में यह प्रतिरोध कई रूपों में दिखाई देता है।

कहीं स्त्री अपने श्रम की पहचान चाहती है, कहीं वह घरेलू जिम्मेदारियों के असमान विभाजन पर प्रश्न उठाती है, तो कहीं वह अपनी स्वतंत्र आकांक्षाओं के लिए स्थान निर्मित करती है। यह प्रतिरोध हमेशा मुखर या क्रांतिकारी रूप में नहीं होता। कई बार यह छोटे–छोटे निर्णयों, आत्मबोध और मौन असहमति के रूप में सामने आता है।

यही साहित्य की विशेषता है कि वह प्रतिरोध को केवल नारे में सीमित नहीं करता। वह स्त्री के दैनिक जीवन की जटिलताओं में प्रतिरोध के सूक्ष्म रूपों को पहचानता है।

पितृसत्ता और घरेलू श्रम का संबंध– घरेलू श्रम की असमानता को समझने के लिए पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का विश्लेषण आवश्यक है। पितृसत्ता केवल पुरुष की सत्ता का नाम नहीं है; यह ऐसी सामाजिक मान्यताओं और भूमिकाओं की व्यवस्था भी है जिसमें स्त्री और पुरुष के कार्यों को अलग–अलग मूल्य प्रदान किया जाता है। जब कमाई को पुरुष का कार्य और घर को स्त्री का कार्य माना जाता है, तब दोनों प्रकार के श्रम के सामाजिक मूल्य में असमानता उत्पन्न होती है। आर्थिक आय वाले श्रम को स्वतंत्रता और प्रतिष्ठा से जोड़ा जाता है, जबकि घरेलू श्रम को प्रेम और कर्तव्य की भाषा में ढक दिया जाता है।

समकालीन हिंदी साहित्य इस संरचना को प्रश्नांकित करता है। वह स्त्री के घरेलू अनुभव को निजी समस्या न मानकर व्यापक सामाजिक व्यवस्था से जोड़ता है। यही परिवर्तन स्त्री विमर्श को व्यक्तिगत अनुभव से सामाजिक आलोचना की दिशा में ले जाता है।

बदलते परिवार और घरेलू श्रम– आज परिवार की संरचना में अनेक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकल परिवारों का विस्तार, रोजगार के लिए शहरों की ओर पलायन, तकनीकी साधनों का बढ़ता प्रयोग और महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार में भागीदारी ने पारिवारिक संबंधों को प्रभावित किया है। फिर भी घरेलू श्रम का मूल प्रश्न समाप्त नहीं हुआ है। उसका स्वरूप अवश्य बदला है। आधुनिक उपकरणों ने कुछ कार्यों को आसान बनाया है, लेकिन घरेलू जिम्मेदारियों का असमान वितरण अनेक परिवारों में अब भी मौजूद है।

समकालीन हिंदी साहित्य इन परिवर्तनों को दर्ज करता है। आधुनिक स्त्री पहले की अपेक्षा अधिक शिक्षित और आर्थिक रूप से सक्रिय हो सकती है, लेकिन उसके सामने परंपरागत अपेक्षाओं और आधुनिक आकांक्षाओं के बीच संतुलन बनाने की चुनौती बनी रहती है। इस द्वंद्व से उत्पन्न तनाव साहित्य में नए स्त्री अनुभवों को जन्म देता है।

घरेलू श्रम और सामाजिक न्याय– घरेलू श्रम का प्रश्न अंततः सामाजिक न्याय का प्रश्न है। न्याय का अर्थ केवल समान अवसर देना नहीं, बल्कि श्रम और जिम्मेदारियों के समान वितरण की दिशा में भी बढ़ना है। यदि परिवार की आर्थिक व्यवस्था सभी सदस्यों की साझा जिम्मेदारी है, तो परिवार की देखभाल और घरेलू श्रम भी साझा जिम्मेदारी होना चाहिए।

यहाँ साहित्य की भूमिका केवल समस्या को दिखाने तक सीमित नहीं है। साहित्य सामाजिक संवेदना का निर्माण करता है। जब पाठक किसी स्त्री पात्र के माध्यम से उसकी थकान, अपेक्षाओं, असंतोष और संघर्ष को अनुभव करता है, तब घरेलू श्रम उसके लिए एक सामान्य दृश्य न रहकर सामाजिक प्रश्न बन जाता है। इस दृष्टि से समकालीन हिंदी साहित्य घरेलू स्त्री–श्रम को सार्वजनिक विमर्श में लाने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। वह यह प्रश्न उठाता है कि परिवार की समृद्धि और स्थिरता के पीछे जिन श्रमों का योगदान है, क्या उन्हें केवल इसलिए कम महत्त्व दिया जाना चाहिए क्योंकि उनका स्थान घर के भीतर है?

निष्कर्ष– समकालीन हिंदी साहित्य में घरेलू स्त्री–श्रम का विमर्श स्त्री जीवन के एक ऐसे पक्ष को सामने लाता है जो लंबे समय तक निजी और स्वाभाविक मानकर उपेक्षित किया जाता रहा। घरेलू श्रम केवल खाना बनाने, सफाई करने अथवा बच्चों की देखभाल तक सीमित नहीं है; इसमें समय, कौशल, शारीरिक ऊर्जा, मानसिक सजगता और भावनात्मक संवेदना का व्यापक निवेश शामिल है। स्त्री के घरेलू श्रम की अदृश्यता को समाप्त करने के लिए सबसे पहले उसकी सामाजिक पहचान आवश्यक है। साहित्य इस पहचान की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वह घर की चारदीवारी के भीतर होने वाले श्रम को भाषा और अर्थ प्रदान करता है तथा यह स्पष्ट करता है कि घरेलू श्रम का प्रश्न व्यक्तिगत स्त्री की समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक संरचना और लैंगिक संबंधों से जुड़ा व्यापक प्रश्न है।

समकालीन हिंदी साहित्य की स्त्री अब केवल त्याग और समर्पण की आदर्श प्रतिमा नहीं है। वह अपने श्रम को पहचानने, अपने समय पर अधिकार रखने और अपने व्यक्तित्व को स्वतंत्र रूप से विकसित करने की आकांक्षा रखती है। उसके लिए परिवार महत्त्वपूर्ण हो सकता है, लेकिन परिवार में उसकी भूमिका केवल सेवा तक सीमित नहीं हो सकती।

इस प्रकार घरेलू स्त्री–श्रम का विमर्श स्त्री मुक्ति के प्रश्न को एक नए धरातल पर ले जाता है। आर्थिक स्वतंत्रता, शिक्षा और रोजगार के साथ–साथ घरेलू जिम्मेदारियों का न्यायपूर्ण विभाजन भी लैंगिक समानता की आवश्यक शर्त है। जब घर का श्रम साझा जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार किया जाएगा, तभी स्त्री की स्वतंत्रता अधिक वास्तविक और व्यापक बन सकेगी।

अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य ने घरेलू स्त्री–श्रम को अदृश्यता के क्षेत्र से निकालकर सामाजिक चेतना के केंद्र में लाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्य की संवेदना हमें यह समझने में सहायता करती है कि किसी समाज की प्रगति का मूल्यांकन केवल उसके आर्थिक विकास से नहीं, बल्कि इस बात से भी होना चाहिए कि वह अपने घरों में किए जाने वाले श्रम और उस श्रम को करने वाले व्यक्तियों को कितना सम्मान और समानता प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मैत्रेयी पुष्पा – स्त्री जीवन और ग्रामीण–सामाजिक यथार्थ से संबंधित रचनाएँ।
2. मन्नू भंडारी – स्त्री जीवन, परिवार और मध्यवर्गीय संबंधों से संबंधित रचनाएँ।
3. कृष्णा सोबती – स्त्री–अनुभव और स्वतंत्र व्यक्तित्व से संबंधित रचनाएँ।
4. प्रभा खेतान – स्त्री विमर्श और पितृसत्तात्मक संरचना पर केंद्रित लेखन।
5. उषा प्रियंवदा – स्त्री के निजी जीवन, परिवार और बदलती सामाजिक परिस्थितियों से संबंधित रचनाएँ।
6. राजेंद्र यादव – हिंदी स्त्री–विमर्श और सामाजिक संरचना से संबंधित आलोचनात्मक लेखन।
7. नामवर सिंह – हिंदी साहित्य और आलोचना से संबंधित प्रमुख आलोचनात्मक कृतियाँ।
8. भारतीय समाज में लैंगिक श्रम–विभाजन, अवैतनिक घरेलू श्रम और स्त्री–अस्मिता से संबंधित समाजशास्त्रीय अध्ययन।
9. समकालीन हिंदी कहानी एवं उपन्यासों में स्त्री जीवन और घरेलू अनुभव पर प्रकाशित आलोचनात्मक शोध।
10. स्त्री–विमर्श, श्रम–विमर्श और पितृसत्ता से संबंधित हिंदी आलोचना एवं शोध–ग्रंथ।

*****